P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-III*November-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

पालि भाषा और साहित्यः एक अनुसंधानिक विमर्श

आर0 के0 राय
प्राचार्य,
हिंदी विभाग,
एस0एम0सी0एल0 काका
पी0जी0 गर्ल्स कालेज,
खत्रीवाड़ा, सिकन्द्राबाद

सारांश

'मूलतः पालि का अर्थ है – पंक्ति,परिधि या सीमा। बाद में मूल–ग्रंन्थ, पवित्र–ग्रन्थ या धर्म–ग्रन्थ की पंक्ति के रूप में उसके अर्थ का विस्तार हुआ, परन्तु पवित्र–ग्रन्थ की टीकाएं उसकी सीमा में नहीं आती हैं। यह शब्द उस भाषा को सूचित करता है जिसमें त्रिपिटक या श्रीलंका, वर्मा और स्याम के बौद्धों की पवित्र संहिताएँ निर्मित हुई है। बौद्ध धर्म के उत्तरी सम्प्रदाय महायान से भिन्न बताने के लिए उक्त धर्म के इस सम्प्रदाय को हीनयान नाम दिया गया। इन धर्म–वैधानिक रचनाओं के अतिरिक्त इस भाषा में 'अठ्ठकथा' नाम से ज्ञात विशान टीका–साहित्य और अनेक काव्य–ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

मुख्य शब्द : पालि भाषाएं साहित्य, आर्य।

प्रस्तावना

समस्त शिष्ट भाषाओं के समान जो हमें अपने अत्युच्च शैली रूपों के साहित्य के साथ सुलभ हैं, पालि स्पष्ट रूपों वाली एक रस भाषा नहीं है, प्रत्युत इस पर अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं में वर्तमान बहुसंख्यक मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं और बोलियों का प्रभाव परिलक्षित होता है, यद्यपि अपने भाषागत लक्षणों में मध्यकालीन भारतीय भाषाओं की सर्वप्रथम प्रतिनिधि ठहरती है। पालि की समग्र प्रकृति की तुलना वैदिक संस्कृत से लेकर लौकिक संस्कृत तक की प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की विशेषताओं के साथ की जा सकती है और उसके विकास की अनेक अवस्थाओं को इनसे पृथक भी किया जा सकता है। यथा –

1. पालि की सर्वप्रथम अवस्था छन्दोबद्ध गाथाओं में देखी जा सकती है जो कि पालि की धर्म संहिताओं में गद्य भागों के साथ अनुस्यूत रूप से बिखरी पड़ी है।
2. इसके बाद साम्प्रदायिक वाड्मय के गद्य भागों की भाषा आती है और यद्यपि वह पुरानी है, फिर भी उसकी यदि गाथा–छंदो से तुलना की जाय तो उसमें आधुनिकीकरण के लक्षण दिखते हैं।
3. तीसरे स्थान पर आती हैं गद्य में लिखी आरम्भी की सम्प्रदायेत्तर रचानाएँ, जैसे–मिलिन्द पन्हों और टीकाओं की गद्यात्मक भाषा।
4. चौथी अवस्था है – उत्तरकालीन काव्य–ग्रंन्थों की भाषा जो संस्कृत साहित्य के लिए बनाएं गये निर्देशों के अनुरूप चलती हैं।

पलि–साहित्य जो त्रिपिटक (तीन मंजूषाएं) शीर्षक के अन्तर्गत आज उपलबध है – विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक – इन तीन पिटाकों में विभक्त हैं जो कि क्रमशः बौद्धधर्म के अनुशासन, धर्म के विषय या धार्मिक सिद्धान्त एवं सिद्धान्तों की ऊँची बारीकियों से संबंध रखते हैं। विनय पिटक में –

1. महा विभंग और भिक्खुनी विभंग में विभक्त सुत्तत विभंग।
2. महावग्ग और चुल्लवग्ग विभागों वाला खन्धक और।
3. परिवार सम्मिलित है।

सुत्त पिटक अपने में पांच निकायों –
संग्रहों को समेटे हुए हैं। वे हैं –

1. दीघ निकाय,
2. मज्झिम निकाय,
3. संयुक्त निकाय,
4. अंगुत्तर निकाय और
5. खुद्दक निकाय

इनमें अंतिम नानाविधि लघुग्रंथों का फुटकर संग्रह है :

1. खुद्दक पाठ,
2. धम्मपद,
3. उदान,

4. इतिवृत्तक,
5. सुत्त निपात,
6. विमान वत्थु,
7. पेतवत्थु,
8. थेरीगाथा,
9. जातक,
10. निद्देश,
11. परिसंभिदामग्ग,
12. अपदान,
13. वृद्धवंश और
14. चरिया पिटक।

अभिधम्म पिटक में सात कृतियां आती हैं

1. धम्म संगणि,
2. विभंग,
3. कथावत्थु,
4. पुग्गल पञ्त्रति,
5. धातुकथा,
6. यमक,
7. महायठ्ठान।

लगभग पांचवीं ईसवी सदी तक सम्प्रदायिक साहित्य के आधार को लेकर निर्मित प्राचीनतम् सम्प्रदायेत्तर पालि साहित्य में अनेकों कृतियाँ आती हैं, जैसे नेति प्रकरण, पेटकोपदेश, सुत्त संग्रह आदि जिनमें स्वभावतः 'मिलिन्द पञ्हों' सर्वश्रेष्ठ है। इसी श्रेणी में दीपवंश भी आता है। इस काल के बाद टीकायुग का आरम्भ होता है, जबकि तिपिटक पर वृहत् टीकाएँ निर्मित हुई। इनमें से अनेक बुद्धघोष द्वारा रचित मानी जाती हैं। जातकठ्ठकथा इस श्रेणी की सर्वाधिक ख्यात कृतियों में से एक है जो कि जातक पद्यों पर एक प्रकार की व्याख्यानात्मक टीका है, जिनमें बुद्ध के पूर्वजन्म से सम्बद्ध 547 कथाएं ग्रथित है। इसी प्रकार धम्मपदठ्ठकथा जो जातक संग्रहों के कुछ बाद का है, अपने कथा अभिप्राय के लिए सर्वविदित है। इसके महान् टीकाकारों में बुद्धदत्त, आनन्द और धम्मपाल उल्लेखनीय हैं। बौद्धधर्म के इतिहास के लिए इतिवृत्त साहित्य भी समान रूप से महत्वपूर्ण है, जिसका उत्कृष्ट उदाहरण 'महावंस' है। उपयुक्त समस्त साहित्य 5वीं और 11वीं ईसवी सदी के बीच निर्मित हुआ था। कच्चायन का प्रथम पालि व्याकरण भी इसी युग की रचना है।

लगभग 12वीं ईसवीं सदी से विवरणात्मक साहित्य की कालावधि आरम्भ होती है, जिसमें टीकाएं तथा धम्मकित्ति की दाठावंस तथा बुद्धप्रिय की पज्जामधु जैसी उत्तरवर्ती रचनाएं आती हैं। व्याकरण विषयक जागरूकता भी पर्याप्त देखने को मिलती है तथा शैली भी अलंकृत होने लगती है, जिसमें भाषा के निरूढ़ रूप और लौकिक संस्कृत के लिए स्थिर किए गये मानकों का दासवत् अनुकरण बहुत कुछ देखने में आता है। व्याकरण के अतिरिक्त मांग्गालान की 'अभिधानप्पदीपिका' में कोष रचना और संघरक्खित के संबोधालंकार में अलंकार शास्त्र का दिग्दर्शन होता है। पालि–साहित्य की प्राचीनता में मतभेद दिखता है। यद्यपि पालि वाड्मय में सुरक्षित परम्पराओं का सार भाग स्वयं बुद्ध के काल तक पहुंचता है, फिर भी एतद् भागों का पूरे निश्चय के साथ प्रकाश में लाया जा सकना सम्भव नहीं है। तीनों बौद्ध संगीतियों के परम्परागत विवरणों को उतने पूर्वकाल में समस्त बौद्ध संहिता के अस्तित्व के साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, लेकिन युक्तिपूर्वक यह स्वीकार किया जा सकता है कि उक्त संहिता का कुछ भाग ईसा पूर्व तीसरी सदी में अशोक के काल में जबकि स्थविर तिस्स की – अध्यक्षता में तीसरी संगीति का होना माना जाता है, अस्तित्व में आ चुका था लेकिन इस आरम्भिक संहिता की भाषा वही पालि नहीं हो सकती जो कि आज हमारे सामने है।

अशोक के तुरन्त बाद मौर्य साम्राज्य के समस्त क्षेत्र में बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ–साथ बुद्ध की शिक्षाएं विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में फैली और जब बौद्धों की नियम संहिता समान परम्परा बनकर सामने आई, पालि निश्चित रूप से विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं से प्रभावित हो चुकी थी और उसने पूर्ण साहित्यिक माध्यम का रूप धारण कर लिया था, संहिता का स्तरों में विभाजन भी संहिता के विविध विभागों की भाषाओं में प्राप्त भिन्नताओं के आधार पर प्रमाणित किया जा सकता है।

अशोक के शिला लेखों (विशेषतःबैराट और भाब्रू) के साक्ष्य के आधार पर यह माना जाता है – 249 ई0पू0 तक पालि त्रिपिटक के विनय और सुत्त विभाग अस्तित्व में आ चुके थे। सात महत्वपूर्ण ग्रंन्थों के उल्लेख के अतिरिक्त अशोक उल्लेख करते है – ''वह सब कुछ जो बुद्ध ने कहा है, ठीक ही कहा है ''।

उसी प्रकार, भरहुत और सांची के प्रसिद्ध स्तूपों के अभिलेख भी समान निष्कर्ष की ओर संकेत करते हैं, तथा इन स्तूपों की बुद्ध के जीवन के निरूपक उद्भृत शिल्पों से परिपूर्ण वेदिकाएं और मुख्यद्वार पूर्ण विकसित बुद्ध आख्यान का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। भरहुत स्तूप की कहानियों और विवरणों के निर्देशक अनेक उद्भृत शिल्प पट्टिकाओं पर अनेक शीर्षक उत्कीर्ण हैं। ये लघु–भिलेख इस बात को प्रमाणित करते हैं कि इन उद्भृतों में जातकों का चित्र प्रस्तुत है। इतना ही नहीं इनमें से अनेक शीर्षक त्रिपिटक के जातक ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त भरहुत और सांची दोनों में प्राप्त संकल्पित लेख भिक्षुओं को माणक–विवरण देने वाला सुतंतिक ''सूत्र पाठ करने वाला'' पिटकों का ज्ञाता और धम्मकथिक–धर्मप्रचारक'' बताते हैं। यह समस्त साक्ष्य स्पष्ट रूप से सूचित करता है कि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से पहले पिटक कहे जाने वाले बौद्धधर्म ग्रन्थों का संग्रह पांचों निकायों और सूत्रों से उपेत रूप में अस्तित्व में आ चुका था। 'मिलिन्द पञ्हों' जिसके प्रामाणिक भाग की प्रथम सदी ईसवीं के प्रथम भाग में होने की संभावना है। इस काल में त्रिपिटक के होने का पूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करता है। उसी प्रकार, बौद्ध संस्कृत–साहित्य भी पालि–परम्पराओं की प्राचीनता प्रमाणित करता है। पालि–ग्रन्थ प्रारम्भिक बौद्ध धर्म के ज्ञान के स्त्रोत एवं विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से हीनयान और महायान–दोनों सम्प्रदायों की सभी अन्य कृतियों से श्रेष्ठ ठहरते हैं।

इसलिए हम यह मान सकते है कि साहित्यिक एवं धार्मिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में पालि ईसा पूर्ण तीसरी सदी से ईसा के बाद लगभग 11वीं सदी के

लम्बे अरसे तक चलती रही और उसके बाद वह भी संस्कृत की तरह केवल विद्वानों तक सीमित रह गई। अठ्ठकथा जैसी वृहत् टीकाओं के काल में तो वह बहुत कुछ रूढ़िबद्ध हो गई थी, फिर भी उसकी अपनी सरलता बनी रही जो कि परवर्ती लेखकों के लिए आदर्श बने संस्कृत साहित्य के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण बाद की कृतियों में नहीं पायी जाती।

पालि त्रिपिटक का मूल आज हमारे लिए सिंहली, वर्मी और स्यामी इन तीन विभिन्न भाषाओं में लिखी गई, पाण्डुलिपियों में सुरक्षित है। इन उक्त तीन लिपिकों में मुद्रित संस्करणों के अतिरिक्त इंग्लैंड की पालि टैक्स्ट सोसाइटी ने टीकाओं के साथ समस्त पालि ग्रन्थों को रोमन लिप्यन्तर में प्रकाशित कर दिया है। भारतीय बौद्ध विद्वानों के श्रम से ये ग्रन्थ धीरे–धीरे सुन्दर देवनागरी में मुद्रित हो उपलब्ध हो रहे हैं। इन आखिरी प्रयत्नों के साथ ही बुद्ध धर्म के मूल गृह भारत में पालि के अध्ययन का नया युग आरम्भ हो रहा है, इसका क्या परिणाम होगा, भविष्य बतायेगा।

साहित्यिक वैशिष्ट्य की दृष्टि से मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में पालि ही एक ऐसी है, जिसने अतीत काल के लिए सामान्य मूर्त के रूपों को बनाये रखकर धातु रूपों में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की समृद्धि के अवशेषों को सुरक्षित रखा है, लेकिन जब हम अशोक के अभिलेखों से आगे बढ़ते हैं तो हम पाते हैं कि निश्चयात्मक वृत्ति में तीन पुरूष और दो वचन–एक वचन और बहुवचन रहे गये हैं –

एकवचन	**बहुवचन**
उत्तम पु0मि0	1.मो
मध्यम पु0सि	2. घ,घ,ह
अन्य पु0ति–दिं,–इ	3. न्ति

अपने विशाटन साहित्य के कारण धार्मिक प्राकृतों की शब्द राशि बहुत ही समृद्ध है। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा में तीन प्रकार के शब्द मिलते हैं : गृहीत (1. तत्सम्, 2. तद्भव) और असजातीय बोलियों से आगत शब्द/उदाहरणार्थ प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की क्रिया 'कृ' निम्न रूपों में पाई जाती है :–

करति : म0 भारतीय आ0 भाषा करति, कर–इ, करेई (कारयति)

करोति : म0 भा0 आ0 करोति, करोदि, करोइ।

कुर्वति : पालि कुब्बति, म0 भा0 आ0 कुब्बई।

कार्यति : म0 भा0 आ0 कज्जई, पालि कयिरति।

यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के सभी रूपों की संवादिका लौकिक संस्कृत में नहीं प्राप्त होती। इस प्रकार, पालि मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में अपना प्रमुख रखती है, जिसके कुछ सामान्य तथ्य इस प्रकार है –

1. कुछ सामान्य स्थानों को छोड़कर जिनमें अंतिम स्वर के अवशेष देखने में आते हैं, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा से विरासत में प्राप्त अन्तिम स्वरों का सामान्य ह्रास और लोप।
2. परिणाम में उपधा या उपान्त्य स्वर को बनायें रखना।
3. आरम्भिक अक्षरों को छोड़कर उपधा के पूर्ववर्ती स्वरों का लोप, वह भी उदासीन वर 'अ' (जो आगे चलकर वर्तमान उच्चारण में विसर्जित होता है) की अपेक्षा समस्त स्वरों के ह्रास द्वारा।
4. म0 भारतीय आर्य भाषा से प्राप्त आरम्भिक अक्षर की विशेषता को सामान्यतः बनाये रखना।
5. म0 भा0 आ0 के दोहरे व्यंजनों का इकहरे व्यंजनों में रूपान्तरण (पंजाबी को छोड़कर) तथा आरम्भिक अक्षर में स्वर का प्रतिपूरक दीर्घीकरण (सिंधी को छोड़कर जहां स्वर का मौलिक प्रा0 भा0 आ0 –परिणाम सुरक्षित रहता है)।
6. उन विभक्तियों के स्थान पर जो कि अपभ्रंश–दशा में पहले ही विलुप्त हो चुकी हैं और संख्या में दो बच रही है : अविकारी और विकारी विभक्ति, भूत और भविष्यकाल के लिए कृदन्त क्रिया रचना–शब्दार्थ विशयक संबंध को अभिव्यक्त करने के लिए शब्द रूप प्रक्रिया में परसर्गों का बढ़ता हुआ प्रयोग।

'इस प्रकार, पालि भाषा एवं साहित्य एक समृद्ध मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'प्राचीन भारतीय शिलालेख
2. 'अशोक कालीन शिलालेख
3. पलि साहित्य
4. त्रिपिटक
5. प्राकृत साहित्य
6. मागधी साहित्य
7. अर्ध–मागधी साहित्य
8. अपभ्रंष साहित्य
9. पालि व्याकरण
10. प्राकृत व्याकरण
11. पालि शब्द कोष
12. प्राकृत/हिन्दी शब्द कोष
13. संस्कृत/हिन्दी कोष
14. पालि भाषा एवं साहित्य का इतिहास
15. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का इतिहास
16. प्राकृत भाषा–विज्ञान
17. प्राकृत भाषाऐं–पिशेल
18. भाषा–विज्ञान का इतिहास
19. भाषा–विज्ञान, भोला नाथ तिवारी
20. 'प्राकृत–भाषाऐं एस0एम0 कत्रे
21. खुद्दक निकाय